(क) लेख वर्तमान सामाजिक अव्यवस्था और समाधान

(ख)रामकृष्ण पौराणिक सागर द्वारा ब्रहमदेव शर्मा, गोविंदाचार्य वनवारी लालशर्मा,गायत्री परिवार आदि के साथ मिलकर काम करने की सलाह और समीक्षा ।

(ग) कुसेड, मार्क्स साम्यवाद,कमाल पासा इसाइयत तथा संगठन शक्ति पर समीक्षा।

(क)वर्तमान सामाजिक अव्यवस्था और समाधान

चाहे व्यवस्था पारिवारिक हो या स्थानीय अथवा राष्ट्रीय, व्यवस्था को ठीक ढंग से चलाते रहने के लिये दो आवश्यकताएँ होती है। 1. मुखिया अधिकार सम्पन्न हो । 2. मुखिया समझदार हो। यदि मुखिया अधिकार सम्पन्न न हो तो अव्यवस्था निश्चित है। यदि मुखिया समझदार न होकर शरीफ हो तो परिवार लुट जायेगा और बर्बाद हो जायेगा तथा यदि मुखिया धूर्त हुआ तो वह स्वयं ही पूरे परिवार को लूट लेगा ।

जब भारत स्वतंत्र हुआ तब हमारे देश में अधिकांश नेता शरीफ थे । उनकी नीयत ठीक थी, समझदारी का अभाव था । उन्हें राजनीति शास्त्र का भी ज्ञान था और धर्मशास्त्र का भी किन्तु समाज शास्त्र का ज्ञान नही के बराबर था। यही कारण था कि उन्होंने भारत की राजनैतिक व्यवस्था के लिये भारतीय स्वतंत्र समाज व्यवस्था का मार्ग न पकडकर विदेशी समाज व्यवस्था की नकल की । नकल को भी वे स्वतंत्रता पूर्वक असल नही बना सके, बल्कि उन्होंने पश्चिम के लोकतंत्र, इस्लाम के धर्मतंत्र और साम्यवाद की तानाशाही का घालमेल करके समाजवाद के नाम पर व्यवस्था चलाने की कोशिश की ।

गांधी जी पूरी तरह ग्राम स्वराज्य के पक्षधर थे । साम्यवादी तथा संघ परिवार के लोग सिद्धान्ततः केन्द्रीयकरण के पक्षधर थे । स्वाभाविक ही है कि पटेल जी उधर ही झुके थे। अम्बेडकर जी ग्राम स्वराज्य के विरूद्ध थे। नेहरू जी अन्दर अन्दर तो ग्राम स्वराज्य के विरूद्ध थे किन्तु उपर से कुछ कहना नही चाहते थे । राजेन्द्र बाबू वगैरह भारतीय संस्कृति के पक्षधर होते हुये भी इतने राजनीति के खिलाड़ी नही थे कि उनकी शराफत अन्य चालाक लोगों को रोक पावें । लोहिया जी और जयप्रकाश जी ग्राम स्वराज्य और समाजवाद का तालमेल बिठाने की कसरत करते रहे। ये लोग प्रारंभ सेही यह स्पष्ट नही कर सके कि समाजवाद ग्राम स्वराज्य के बाद ही आ सकता है, पहले नहीं । ये लोग समाजवाद और ग्राम स्वराज्य को एक साथ लाना चाहते थे जो बिल्कुल विपरीत प्रयत्न था । जय प्रकाश जी को बहुत जल्दी यह बात समझ में आ गई किन्तु लोहिया जी जीवन भर दोनो के धालमेल की ही कोशिश करते रहे । गांधी के बाद और कोई नही था जो राजनीति के दाव पेच समझ पाता । गांधी जी के वारिस विनोबा भावे तो इतने शरीफ निकले कि सब कुछ लुट जाने में भी वे सुख और शान्ति का अनुभव ही करते रहे । त्याग का कीर्तिमान बनाते बनाते हमारी सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था लुट गई और विनोबा जी कीर्तिमान बनाते रहे।

नेहरू जी और अम्बेडकर जी भी थोड़ी सी सत्ता के लिये तो चालाकी करते थे किन्तु अन्य मामलो में इनकी नीयत खराब नही थी । नेहरू जी भारतीय समाज शास्त्र को पश्चिम के रंगीन चश्मे से देखते थे तो अम्बेडकर जी जीवन भर सवर्णो की प्रतिक्रिया के उपर कभी उठे ही नही। समाजशास्त्र का यह आवश्यक नियम होता है कि आर्थिक, सामाजिक तथा प्रशासनिक समस्याओ की ठीक ठीक तथा अलग अलग पहचान हो तो उनका समाधान भी उसी वर्ग के अनुसार किया जावे अर्थात् सामाजिक समस्याओ का सामाजिक, आर्थिक समस्याओं का आर्थिक तथा प्रशासनिक समस्याओ का प्रशासनिक समाधान हो । ना समझी मे इन दोनो ने इस समाजशास्त्रीय सिद्धान्त को उलट कर रख दिया । अम्बेडकर तो प्रतिकिया मे इतने उतावले थे कि वे सभी सामाजिक समस्याओ का प्रशासनिक समाधान तत्काल ही करने मे जुट गये । नेहरू जी भी दबे छिपे उनके साथ हो लिये । दूसरी ओर नेहरू जी भी सभी आर्थिक समस्याओ का प्रशासनिक समाधान करने के लिये उतावले हो गये । समाजवाद के नारे ने इनके चिन्तन की सारी सीमाएँ तोडकर उसे एकतरफा बना दिया । इन लोगो ने एक दो अच्छे कदम उठाने के बाद कुछ ऐसा गुड–गोबर किया कि देश और समाज आज तक उबर नही पाया । जिस तरह अम्बेडकर जी के समाज तोड़क कदमो का नेहरू जी ने बिना विचार किये साथ दिया उसी तरह अम्बेडकर जी ने भी नेहरू जी के समाजवादी आर्थिक कदमो का भरपूर साथ दिया । समाजवाद की जल्दबाजी मे एक किरायेदार कानून पास कर दिया गया जिसके अनुसार मकान मालिक का मकान झूठ बोलकर कब्जा करने की स्वतंत्रता किरायेदारों को दे दी गई । ऐसा कानून बिना सोचे समझे जल्दबाजी मे लागू कर दिया गया । आर्थिक समस्या का प्रशासनिक हस्तक्षेप से समाधान करने की कोशिश हुई । समस्या का समाधान तो नहीं हुआ उल्टे इसके परिणाम स्वरूप सत्य और ईमान का गला घुट गया । मकान मालिक और किरायेदार के बीच चालाकी और धूर्तता के नये नये कीर्तिमान बनने लगे। न्यायपालिका पर भी भारी बोझ बढा। अनेक मामलो में तो हिंसा या बल प्रयोग का भी सहारा लिया गया और प्रशासनिक मशीनरी बोझिल हुई । इन सब परिणामो की पूर्व कल्पना की उस समय फुर्सत किसे थी ? समाजवाद की लोकप्रियता उचित अनुचित पर विचार करने का समय ही नही दे रही थी । समाजवाद के नाम पर उस समय जो भी कानून बने उसमें सबसे अधिक चरित्र पतन में यह कानून ही सहायक हुआ । किसी का भी मकान किराये पर लेकर अपना बना लेने की बेइमानी को सामाजिक प्रशासनिक मान्यता मिल जावे तो समाज में चरित्र खोजने से भी मिलना संभव ही नही है। जो स्वाभाविक था वही हुआ ।आर्थिक विषमता तो घटी नही, चरित्र घटता चला गया। इस कानून का भूत आज तक समाज का पिण्ड नही छोड सका है। दुष्परिणामों से बचने के लिये कई किनारे के मार्ग खोजे गये और खोजे जा रहे है किन्तु किसी की हिम्मत नही कि समस्या की जड़ पर विचार करना शुरू करे ।

ऐसी ही एक दूसरी आर्थिक समस्या की चर्चा करे। अर्थशास्त्र का एक जटिल सिद्धान्त है कि आपको किन्हीं अन्य कार्यो के लिये धन चाहिये तो उक्त कर लगाने के पूर्व आप अपनी इच्छा को स्पष्ट कर ले । यदि आप टेलीफोन का उपयोग घटाते हुये धन वसूलना चाहते है तो टेलीफोन काल को मंहगा करे और उपकरण को टैक्स फ्री रखे । दूसरी ओर यदि आप टेलीफोन का उपयोग बढाते हुये धन वसूलना चाहते है तो कॉल को सस्ता रखते हुए उपकरण पर टैक्स बढावें । हमारी सरकार को सडकों के रखरखाव के लिये धन चाहिये था । दो मार्ग थे या तो गाड़ियो पर टैक्स लगावें या डीजल पेट्रोल पर । प्रारभ में तो दोनो पर कर लगे किन्तु बाद मे उपकरण पर टैक्स बढाते गये और इंधन पर राहत देने लगे । आवागमन बढता चला गया । यदि इसका ठीक उल्टा होता अर्थात गाडियों को टैक्स फ्री करके सारा टैक्स इधन पर लगाया जाता तो आवागमन तो इतना नहीं बढता किन्तु सुविधा बहुत बढ जाती । घर घर में गाडी तो होती किन्तु चलती बहुत सोच समझकर । हमारे अर्थशास्त्री भी आज तक इस बात को समझ नही सके कि उपकरण और इधन का क्या तालमेल होता है।

इस बात को और ठीक से समझने के लिये हम भूमि की मालगुजारी और कृषि उत्पादन पर कर की चर्चा करे । बहुत प्राचीन काल में भूमि पर टैक्स था किन्तु अनाज तिलहन जैसे उत्पादन कर मुक्त थे ।

अंग्रेजो की भूख बढी तो उन्होने जमीन और उत्पादन दोनो पर कर लगा दिया । स्वतंत्रता के बाद शासन को उत्पादन में बृद्धि को प्रोत्साहित करना था जिससे कम भूमि में अधिक उत्पादन लेने को प्रोत्साहन मिले। नासमझ सरकार ने अनाज तिलहन पेड पौधे गन्ना आदि सब प्रकार के उत्पादनो पर तो भारी कर लगा दिये और जमीन का लगान या तो माफ कर दिया गया या कम कर दिया। जमीन की लगानमाफी एक लोकप्रिय कदम था क्योकि यह प्रत्यक्ष कर था। अनाज तिलहन गन्ना आदि पर कर अप्रत्यक्ष होने से शासन की कोई बदनामी नही होनी थी । इन अप्रत्यक्ष करों का शासन को ऐसा चस्का लगा कि शासन कई प्रकार की तिकड़म करके अधिक से अधिक पैसा ऐसी वस्तुओं से वसूलने लगा और बदले में इन उत्पादकों को भी सस्ती खाद सस्ती बिजली जैसे लोकप्रिय प्रलोभन देने लगा । मै समझ नही सका कि कपास या चना अरहर मूंग जैसे दलहन फसलों से भारी कर वसूल कर लगान या बिजली पर राहत देने का गणित क्या है ? किसान सरसों या सरसों तेल पर टैक्स दे और मिट्टी तेल पर सब्सीडी ले ऐसी कोशिश क्यों की जावें । पेड़ों पर भारी कर लगे और ट्रैक्टर पर छूट हो यह बात भी समझ से परे है। मैं तो आज तक समझ नही सका कि अनाज, तिलहन, बीड़ी पत्ता, लकड़ी जैसे कृषि उत्पादों पर भारी कर वसूल कर कृषि भूमि पर लगान बढाने से क्यो बचते रहे । परिणाम दूरगामी हुआ । हम आज भी दलहन तिलहन का तो आयात ही कर रहें है। शक्कर का भी उत्पादन घट ही रहा है। अनाज का उत्पादन भी कोई ऐसी स्थिति में नही है कि हम एक दो वर्षो का संकट झेल सके । इसके विपरीत भूमि के दाम आसमान छूने लगे। खेती अलाभकर होती गई और खेती की जमीन लाभकर होती गई। इस विपरीत परिणाम का दोषी कौन? क्यों नही राज्य ने कृषि भूमि उत्पादन पर से सारा टैक्स हटाकर भूमि पर डाल दिया । यदि ऐसा होता तो खेती लाभदायक होती और पड़त भूमि हानिकर होती । यदि भूमि पर ही कर होता तो व्यापारियों के कई प्रकार के कर चोरी के भी अवसर नही होते । सबसे अच्छा तो यही होता और चरित्र की गिरावट रोकने का भी यह अच्छा कदम होता ।

प्रश्न उठता है कि स्वतंत्रता के समय हमारे मुखिया लोग इतना समझ नही पाये इसलिये ये भूलें हुई या जानबुझकर । किन्तु अब भी क्यों नही सुधार हो रहा। स्थितियॉ उलट गई है । उस समय हमारे मुखिया लोगों की नीयत ठीक थी, नीतियॉ गलत। अब हमारे देश के राजनेताओं की नीयत ही खराब हो गई है इसलिये वे ऐसी नीतियॉ बढा रहे है। उन्हें ऐसे प्रतिबन्धों का प्रत्यक्ष लाभ मिल रहा है तो ये लोग क्यों इन नीतियो में बदलाव करें ?

इसलिये अब हमारा सबसे पहला कदम यह होना चाहिये कि हम वर्तमान लोकतंत्र को अस्वीकार करके लोकस्वराज्य की दिशा में आगे बढ़ना शुरू करें । सामाजिक समस्याओं के सामाजिक समाधान, आर्थिक समस्याओं के आर्थिक समाधान तथा शेष बची खुची प्रशासनिक समस्याओं के लिये ही प्रशासनिक समाधान की बात करें । हम गांवो से ग्राम सभा सशक्तिकरण को आधार बनाकर यदि राजनैतिक हस्तक्षेप को सीमित, संशोधित और परिष्कृत कर दे तो अधिकांश समस्याओं पर अंकुश लग सकता है। आज भी भारत के गांव, चरित्र पतन में शहरों की अपेक्षा दूर है। गॉवों में लोकस्वराज्य आसान हो सकता है। उचित होगा कि हम गांवो से ग्राम सभा सशक्तिकरण शुरू करें और तब शहरों की ओर लगातार बढ़ते जावें ।

पत्रोत्तर

(ख) श्री रामकृष्ण पौराणिक 7/187 वृन्दावन वार्ड, सागर, मध्यप्रदेश 470001

सुझावः– मैं लम्बे समय से पत्रिका का एक एक अक्षर पढ़ता भी हूँ और सहेज भी करता हूँ । उम्र और स्वास्थ्य अनुमति नही देता कि बाहर की किसी बैठक में शामिल हो सकूँ किन्तु संविधान के जिस छोर से यात्रा करते हुए आप इस चौराहें तक पहुँचें है उस यात्रा में मै सदा आपके साथ साथ हूँ।

ज्ञान तत्व 184 पढ़ रहा हूँ । हर अंक पढकर ऐसा लगता है जैसे कई बार पढूँ । पत्रिका में एक भी शब्द ऐसा नही जो महत्व हीन हो । पूरे जीवन मे मै बहुत सी पत्रिकाएँ पढ़ता रहा किन्तु आज तक ज्ञानतत्व के समकक्ष कोई पत्रिका नही दिखी। पहलें तो मैं आपकी लेखनी से ही प्रभावित था किन्तु धीरे धीरे विश्वास हुआ कि लेखनी से साहित्य की धारा न बहकर विचारों की धारा बह रही है। और निश्चित रूप से विचार धारा अधिक शक्तिशाली हुआ करती है। आपने लोकस्वराज्य के प्रति समर्पण भी व्यक्त किया है और सफलता के प्रति विश्वास भी, यह कोई सामान्य घटना न होकर विशेष माननी चाहियें।

वर्तमान समय में बनवारी लाल जी शर्मा, ब्रम्हदेव जी शर्मा, गोविन्दाचार्य जी, सर्वोदय तथा गायत्रीपरिवार कहीं न कही ऐसे ही प्रयत्नों में लगें हुऐ है। यदि सब लोग एक साथ मिलकर इस मुद्दे पर सहमत हो जाते तो बदलाव निश्चित और बहुत कम समय में ही संभव है। सबको एक साथ बिठाने की पहल ठाकुरदास जी बंग कर सकते थे किन्तु उनकी उम्र बाधक है। आप यदि पहल करे तो संभव है। मैने आपमें ऐसी विलक्षण प्रतिभा का अनुभव किया है। आपने अपने सीमित संसाधन होते हुए भी यह सिद्ध करने में सफलता पाई है कि संविधान कोई ऐसी दैवी अमानत नही है जिसमें संशोधन की पहल समाज नही कर सकता । आपका यह प्रयत्न भले ही प्रतीकात्मक रूप से ही सफल रहा है किन्तु सफल तो है ही । इसे और आगे बढाकर लोकस्वराज्य की दिशा देने की जरूरत है। मैं अन्य विद्वानों से भी निवेदन करूगा कि वे आपके साथ मिल बैठकर कोई पहल करे।

उत्तरः– आपका पत्र काफी पहले मिला था । पिछले तीन माह में मुझे दो बार आंख का आपरेशन कराने के कारण लम्बा आराम करना पडा । इसलिये लिखने पढ़ने में बाधा हुई । दिल्ली के बाद कार्यालय भी अव्यवस्थित रहा । अब आपकी दया से शरीर भी पूर्ण स्वस्थ है। अब इंटरनेट भी ठीक काम करने लगा है और वेवसाइट भी चालू हो गया है। इंटरनेट और वेवसाइट का विवरण इसी अंक के अंत में लिखा है।

आपने जिन साथियों का उल्लेख किया है वे सभी किसी न किसी रूप में मेरा मार्गदर्शन और सहयोग कर रहे है। बंग जी के नेतृत्व में सर्वोदय के लोगो का पूरा पूरा समर्थन है ही। गोविन्दाचार्यजी का भी आशीर्वाद मिलता ही रहता है । आर्य समाज के राजसिंह जी आर्य इस योजना मे साथ हैं। ब्रहम देव जी शर्मा तो स्वयं ही लोक स्वराज्य के जनक माने जाते है । मै तो उनके समक्ष कुछ भी नही। गायत्री परिवार के प्रणव पंडया जी और बनवारी लाल जी शर्मा से व्यक्तिगत जुडाव नही हो पाया किन्तु दोनो के ही प्रमुख साथी हमारे साथ हैं। इस तरह आप विश्वास रखिये कि बंग जी के नेतृत्व मे चल रहा लोक स्वराज्य अभियान बंग जी का अकेले न होकर इन सब महापुरूषों की संयुक्त पहल नही होती तो लोक स्वराज्य विरोधी लोग कबका इसे बन्द कराने मे सफल हो जाते । बंग जी पर भी कोई मामूली दबाव नही पडा था । लेकिन वे चट्टान के समान लोक स्वराज्य के पक्ष मे खडे रहे। अन्त मे विरोधियों को दबना पडा । इसलिये मै आपको आश्वस्त करता हूँ कि धीरे धीरे सबकी एक जुटता बढ रही है। यह अलग बात है कि लोक स्वराज्य के साथ साथ सबके कुछ अलग अलग भी संगठन के कार्य चलते रहते हैं जिनमे उन्हे समय भी लगाना ही पडता है। फिर भी वे समय निकालकर लोकस्वराज्य के समर्थन मे आ खडे होते हैं यह भी कोई साधारण बात नहीं।

एक सितम्बर दो हजार नौ से लोक स्वराज्य अभियान अपने अगले चरण मे प्रवेश कर चुका हैं। अब समस्याओ की पहचान, कारण और समाधान पर चर्चा की आवश्यकता नहीं रही। समस्याओं की पहचान भी पूरी हो चुकी है और कारण भी । समाधान भी लोकस्वराज्य के रूप में प्रत्यक्ष है। अब तो कार्य प्रारम्भ

करना शेष था जो एक सितम्बर से प्रारंभ हो चुका हैं । पचीस दिसम्बर को हमे पहली बडी सफलता मिलने जा रही है जब एक विकासखंड रामचंद्रपुर (मुख्यालय रामानुजगंज) के सभी एक सौ तेरह गांवो के लोग एक साथ लोक स्वराज्य घोषित करेंगे । सब लोग मिलकर घोषणा करेंगें कि इन सब गांवो में

1–लोक और तंत्र के बीच दूरी कम से कम हो जायगी।

2–किसी भी कार्य में किसी भी प्रकार का बल प्रयोग नहीं होगा ।

3–वर्ग विद्वेष को वर्ग समन्वय मे बदला जायगा। धर्म, जाति, भाषा, क्षेत्रीयता, उम्र, लिंग, गरीब– अमीर, उत्पादक–उपभोक्ता के भेद भाव मूलक विचारों को समाज व्यवस्था से अमान्य करके व्यक्तिगत व्यवहार या सरकरी काम काज तक सीमित कर दिया जायेगा।

4– भ्रष्टाचार मुक्त पंचायत व्यवस्था होगी। ग्रामसभाओं की व्यवस्था के लिये प्राप्त किसी भी धन में से कोई सरकारी पंच सरपंच या कर्मचारी एक पैसा भी गड़बड़ नही कर सकेगा । प्रत्येक गांव में एक ग्रामीण लोक पंचायत होगी जो सरकारी पंचायत की निगरानी करेगी । लोक पंचायत में एक हजार की आबादी पर पन्द्रह सदस्य रहेगें जिनमें किसी तरह का कोई भेद भाव नही होगा। इसका गठन भी ग्राम सभा ही करेगी । इस पंचायत को कोई अधिकार प्राप्त नही होगा । यह लोक पंचायत ग्राम सभा को सलाह, सूचना या जानकारी देने मात्र तक सीमित रहेगी।

5– राज्य शासन से निवेदन किया जायेगा कि किसी भी किसान की अपनी जमीन पर पैदा किसी भी प्रकार की फसल से न कोई टैक्स ले न ही आवागमन पर कोई प्रतिबन्ध लगावें । उत्पादक अपना उत्पादन किसी भी मात्रा में किसी भी मूल्य पर किसी भी व्यक्ति या फैक्ट्री को बेचने के लिये स्वतंत्र हो । उत्पादक के मर्जी के बिना उत्पादक और उपभोक्ता के बीच में कोई बिचौलिया न हो । सरकार भी नही । सरकार चाहे तो उत्पादक और उपभोक्ता के बीच प्रोत्साहन या सहयोग दे सकती है किन्तु वाध्य न करे। हम इसके लिये शासन से निवेदन मात्र करेगें, मांग नही करेंगे। हम इस कार्य के लिये कोई आंदोलन भी नही करेंगे क्योंकि ग्राम सभा मालिक है और राज्य मैंनेजर । यदि मैनेजर मालिक की बात नही सुनता है तो उससे झगडने की अपेक्षा समय आने पर उसे हटा देना ही उपयुक्त होगा।

इन पांच आधारों पर हम पचीस दिसम्बर से कार्य करना शुरू कर रहे है। आशा है कि आप सब का सहयोग समर्थन मार्गदर्शन मिलता रहेगा।

कार्यालयीन प्रश्नों के उत्तर

(ग) ज्ञान तत्व अंक एक सौ सतासी में आपने धर्म, समाज, राज्य जैसे विषय की जो व्याख्या की है वह अभूतपूर्व है। ढाई हजार वर्षो से किस प्रकार धर्म स्वरूप बदलकर संगठन बना, संगठन ने किस प्रकार हिंसा का मार्ग पकड़ा और वह हिंसा का मार्ग किस सीमा तक जाकर सम्पूर्ण समाज व्यवस्था का नासूर बन गया यह बहुत ही सरल शब्दों में बताया गया है । आपने जो कुछ लिखा है उसका एक एक घटना क्रम हम जानते है, किन्तु जैसे कई प्रकार के फूल पास में होते हुए भी माला गूथना आसान नही होता उसी तरह आपने सारी घटनाओं को जिस तरह जोड़ दिया वह हमारे बस का नही था । आपने साम्यवाद को भी उसी कड़ी का भाग बताया जो बिल्कुल ठीक होते हुए भी हमारी सोच के बाहर था।

आपने लेख को इतना संतुलित रखा है कि प्रश्न करने की कोई आवश्यकता प्रतीत नही होती। फिर भी कुछ तो शंकाएँ है ही । साथ ही इस विषय को और अधिक स्पष्ट करने कराने के उद्देश्य से हम कुछ

अनावश्यक प्रश्न भी उठा रहे है । बिना प्रश्न किये भी काम चल सकता है किन्तु विषय सामान्य पाठको के समक्ष और खुल कर आ सके इसलिये ये प्रश्न आपको भेजे जा रहे है। आशा है कि आप इन प्रश्नो को आधार बनाकर विषय को और अधिक स्पष्ट करेगें ।

प्रश्न 1. आपने लिखा है कि क्रुसेड इसाइयों का आपसी हिंसक टकराव था जबकि आम धारणा है कि क्रुसेड जन संहार इसाइयों ने दूसरे धर्म वालो के साथ किया। आप क्रुसेड के विषय को और स्पष्ट करे ।

2. आपने लिखा है कि मार्क्स ने हिंसा और बन्दूक को आधार बनाया और उसने बन्दूक और सता का ऐसा संगठित स्वरूप बनाया कि दुनिया को गुलाम बनाना आसान हो जावे। हमारी राय में मार्क्स तो एक विचारक मात्र थे। पूँजीवादी शोषण से मुक्ति के उद्देश्य से मजदूर एकता उनका नारा था । उनका उद्देश्य दुनिया को गुलाम बनाना नही था भले ही बाद में मार्क्स वादियों ने यह राह पकड ली थी । आप मार्क्स के विषय को और स्पष्ट करे ।

3. यह सत्य है कि साम्यवादियों ने धर्म को अफीम कहा किन्तु उन्होंनें धर्म के नाम पर न कोई युद्ध किया न ही हिंसा की । उन्होंने जो भी हिंसा या अत्याचार किये वे सब सत्ता संर्धष के भाग थे। फिर आप उन्हें धर्म के साथ कैसे जोड़ सकते है।

4. आप ने लिखा है कि इस्लाम को झटका दिया तुर्की के कमाल पाशा ने। उस काल खण्ड में इस्लाम मतानुसार धर्म और राज्य का एक मिला जुला प्रमुख होता था जिसे खलीफा कहते थे। खलीफा तुर्की में था। कमालपाशा के आंदोलन के कारण खलीफा हार गया और कमालपाशा जीत गये। अब खलीफा का पद समाप्त होने बाद भी इस्लाम का स्वरूप नही बदला । आज भी जेहाद के नाम पर हिंसा का वही तांडव जारी है। यह स्वरूप बदला क्यो नही ?

5. आपने इस्लाम की तलवार और इसाइयत की करूणा को विश्व विजय की कोशिशो का आधार बताया। क्या आपका यह कथन सच है ? क्या इसाइयों ने दुनिया को गुलाम बनाने के प्रयत्नो में करूणा का उपयोग किया ?

6. आपने लिखा है कि जो हिन्दुत्व इतने कठिन दौर से गुजरते हुये भी बच कर बाहर निकल गया उसे भी संगठन और हिंसा की बीमारी लग गई है। प्रश्न यह है कि सन् सैतालीस आते आते हिन्दुत्व सिकुडते सिकुडते आधा हो गया था । यदि संगठन का सहारा न लिया जावे तो हिन्दुत्व और नही सिकुड जायेगा इसकी क्या गारंटी है? क्या आप ऐसे खतरो से निपटने का कोई और भी समाधान देख रहे है?

उत्तरः— मैनें उक्त ज्ञान तत्व एक सौ सतासी मे धर्म समाज और राज्य की जो सूक्ष्म विवेचना की है वह कई वर्षो तक कई सामाजिक विद्वानों के साथ हुये विचार मंथन का परिणाम है। इसलिये मैं अकेला उस श्रेय का अधिकारी नहीं । मुझे संतोष हुआ कि आप लोगो ने उक्त लेख की भावना तथा विचार को ठीक से समझा। आपने जो प्रश्न उठायें है वे प्रश्न बहुत महत्वपूर्ण है। मै उन सब का उत्तर देकर विषय को और अधिक स्पष्ट करने का प्रयास करूगा ।

1. मेरे लेख की दिशा यह थी कि भारतीय समाज व्यवस्था में धर्म समाज और राज्य का पृथक पृथक अस्तित्व था जो एक दूसरे को Check and balance करते रहते थे अर्थात् तीनो एक दूसरे की सहायता और आवश्यकतानुसार नियंत्रण करते रहते थे । ढाई हजार वर्ष के आस पास बुद्ध और जैन धर्म ने धर्म को संगठन का स्वरूप दिया, ईशुमसीह ने उसे आगे बढाया, मोहम्मद साहब ने हिंसा से जोड़ा और मार्क्स ने धर्म और समाज को नकार दिया । मैनें हिन्दु, बौद्ध, इसाई, मुसलमान और कम्युनिस्टों की तुलना की है । अन्य छोटे छोटे तथाकथित धर्मो की विवेचना करना आवश्यक नही समझा । क्रुसेड में इसाइयों का टकराव न

हिन्दुओं से हुआ न समाजवादियों से । या तो वह मुसलमानों से हुआ या अन्य सम्प्रदायों से जिन्हें मै इसाइयों की शाखा मानता हूँ। मुझे बताया गया कि क्रुसेड में टकराव मुसलमानों से नही हुआ था । इस आधी अधूरी जानकारी के आधार पर मैनें क्रुसेड को इसाइयों का आन्तरिक संघर्ष लिखा । यदि गलत होगा तो आप और जानकारी भेजिये तो सुधार लेगें।

2. मार्क्स ने जो विचार दिया वह स्वयं मे ही दोष पूर्ण होने से उक्त दोष का लाभ मार्क्सवादियों ने उठाया। यदि आप आग और पेट्रोल की दूरी को बिना उचित नियंत्रण के कम करेगे तो बिस्फोट का दोषी कौन? धर्म समाज और राज्य का पृथक पृथक अस्तित्व कोई ऐसी खराब व्यवस्था नही थी कि उसे तोड़कर राज्य को ही एकाधिकार सौप दिया जावे। मार्क्स एक विचारक थे किन्तु उनके विचार उस समय की तात्कालिक समस्याओं का समाधान खोजने की अपेक्षा पूँजीवाद के विरूद्ध प्रतिक्रिया के रूप में सामने आये जिस तरह अम्बेडकर जी के विचार हिन्दू धर्म की तात्कालिक बुराईयों के विरूद्ध प्रतिक्रिया के रूप में आये। प्रतिक्रिया से उपजी क्रिया दूरगामी समस्या पैदा करती है। हम देख रहे है कि अम्बेडकर जी की ऐसी प्रतिक्रिया का परिणाम आज सम्पूर्ण भारत को भोगना पड़ रहा है और ऐसी ही मार्क्स की अविचारित प्रतिक्रिया का परिणाम सारा विश्व भोगता रहा है।

3. समाज के सुव्यवस्थित संचालन में धर्म, समाज और राज्य की पृथक पृथक भूमिका को समझना आवश्यक है । इक्के दुक्के बहुत अधिक समझ रखने वाले बिरले लोगों को छोड़कर शेष पूरा समाज किसी न किसी भय के आधार पर व्यवस्थित चलता रहता है। यह भय तीन प्रकार का होता है। – 1. ईश्वर का 2. समाज का 3. सरकार का । ईश्वर का भय अदृष्य, अस्तित्व हीन, तथा भावनात्मक होता है किन्तु यह भय सर्वाधिक प्रभाव शाली भी होता है। इस भय का परिणाम स्वशासन होता है। जो थोडे से लोग बुद्धिजीवी होते है वे इस भय को पार कर जाते है उनमें समाज व्यवस्था का भय बनाया जाता है जिसे हम अनुशासन कहते है । बहुत कम लोग ऐसे होते है जो न ईश्वर का डर मानते है न ही समाज का । ऐसे लोग यदि अपराध करना शुरू कर दे तो उन पर शासन के माध्यम से ही नियंत्रण होता है क्योकि वे स्वशासन और अनुशासन को पार कर चुके है । ऐसे लोगों को दण्ड देने हेतु ही सरकार होती है। सरकार का काम न स्वशासन को बढाना है न अनुशासन को। उसका तो सीधा सीधा काम है शासन। शासन का काम प्रतीकात्मक भय बनाना होता है न कि वास्तविक दण्ड देना । शासन अधिकतम दो प्रतिशत तक ही नियंत्रण की क्षमता रखता है अन्यथा उसकी प्रत्यक्ष भूमिका तो एक प्रतिशत से भी कम आबादी पर प्रभाव डालने वाली होनी चाहियें। मार्क्स ने ईश्वर के स्थान पर राज्य को स्थापित करने की कोशिश की और कहा कि मार्क्सवाद के चरम में राजा और राज्य समाप्त हो जायेगें और व्यवस्था अस्तित्वहीन राज्य के भय से अपने आप चलती रहेगी । उसने समाज व्यवस्था परिवार व्यवस्था को भी उक्त व्यवस्था में बाधक बताया और सबका एक ही केन्द्र बनाया राज्य । मार्क्स यह भूल गया कि ऐसी निरंकुश सत्ता जिस भी व्यक्ति के पास केन्द्रित होगी उसकी नीयत खराब हुई तो क्या होगा ? मार्क्स के मरने के बाद जो भी शासक होगा उसकी नीयत मार्क्स के ही समान स्वयं को शून्य करने की होगी इसकी क्या गारंटी है। मार्क्स यहॉ ही भूल कर बैठा। व्यक्ति की नीयत पर विश्वास तो आवश्यक है किन्तु वह विश्वास अंतिम सीमा तक नही हो सकता । ऐसी अंतिम सीमा से उपर किसी न किसी व्यवस्था का नियंत्रण होना ही चाहियें । मार्क्स ऐसे नियंत्रण के विषय में सोच ही नही सका जबकि भारतीय व्यवस्था में अनियंत्रित राज्य व्यवस्था पर धर्म और समाज का नियंत्रण था। यदि कोई राजा ईश्वर और समाज को न भी माने तो समाज एक जुट होकर उस तानाशाही से मुक्ति का मार्ग निकालेगा ,यह व्यवस्था थी जिसे मार्क्स भूल गया।

4. भारतीय समाज व्यवस्था चार प्रकार के संतुलन का परिणाम थी । 1. बुद्धि अर्थात् ब्राम्हण 2. शक्ति अर्थात् क्षत्रिय 3. धन अर्थात् वैश्य 4. श्रम अर्थात् शूद्र । यदि हम दो हजार वर्षो के विभिन्न धर्मो की सूक्ष्म विवेचना करे तो भारत की समाज व्यवस्था पर बुद्धि को सर्वोच्च स्थान प्राप्त था अर्थात् हम उसे ब्राम्हण प्रवृति प्रधान व्यवस्था कह सकते है। जब इसाइयत का प्रभाव बढा तो तर्क के स्थान पर धन का वर्चस्व बढा। धन विश्व व्यवस्था पर नियंत्रण का मुख्य माध्यम बना। ऐसी व्यवस्था को हम वैश्य प्रवृति की व्यवस्था कह

सकते है । जब इसलाम आया तो उसने तर्क और धन के स्थान पर शक्ति को सफलता का आधार बनाया । इस व्यवस्था को हमनें क्षत्रिय प्रवृति माना जहॉ व्यवस्था में धन और तर्क की अपेक्षा शक्ति को अधिक महत्व दिया गया । साम्यवादी व्यवस्था में भीड़ को ही सत्ता का आधार बनाया गया । इसने धन और बुद्धि को पूरी तरह अमान्य कर दिया। इसने भीड़तंत्र को शक्ति से समझौता करने की सलाह दी । इसे शूद्र प्रवृति की व्यवस्था कह सकते है। अब साम्यवाद असफल सिद्ध हो चुका है । इस्लाम भी जल्दी ही दम तोड़ेगा या नीति बदलेगा। पूॅजीवाद अभी प्रगति पर है। भारत की व्यवस्था को पूॅजीवाद से टकराकर अपनी श्रेष्ठता स्थापित करनी होगी । भारत जिस तरह अमेरिका के पूॅजीवाद के चक्कर में पीछे पीछे जा रहा है वह साम्यवाद और इस्लाम के खूनी पंजे से मुक्ति के लिये तो तात्कालिक कदम हो सकता है किन्तु आगे चलकर भारतीय समाज व्यवस्था की प्रतिस्पर्धा पूॅजीवाद से ही होनी है। पूॅजीवाद भले ही इस्लाम और साम्यवाद के समान हिंसा का समर्थक नही होने से हमारा शत्रु घोषित न हो किन्तु वह हमारा प्रतिद्वंदी तो है ही यह बात हमें कभी नही भूलनी चाहियें ।

5. साम्यवादियों ने धर्म और समाज को पूरी तरह अस्वीकार कर दिया । जब उनकी नजर में न धर्म का कोई अस्तित्व है न समाज व्यवस्था का तो उनकी कोई प्रतिद्वंदिता किसी अन्य धर्म से न होकर सभी धर्मो के अस्तित्व से ही हो गई । साम्यवाद यदि स्वयं को ही एक धर्म कहता तब किसी अन्य धर्म से उसका टकराव होता । साम्यवाद की प्रतिस्पर्धा समाज व्यवस्था से हुई जो प्रत्यक्ष न होकर परोक्ष रही। यही कारण रहा कि साम्यवाद ने समाज व्यवस्था तथा परिवार व्यवस्था को तोडने के लिये भरसक कोशिश की । इस कोशिश में उसने धर्म, जाति, भाषा, क्षेत्रीयता, उम्र, लिंग, उत्पादक, उपभोक्ता के सात माध्यमों का अप्रत्यक्ष उपयोग किया और आर्थिक असामानता को अप्रत्यक्ष आधार बनाया।

6. तुर्की में खलीफा धर्म और राज्य दोनो के प्रमुख थे किन्तु वे सम्पूर्ण विश्व के इस्लाम के एकमात्र धर्म गुरू थे या नही यह मुझे नही मालूम। हो सकता है कि वे तुर्की के ही राज्य और धर्म के संयुक्त प्रधान रहे हो। इस विषय में और जानकारी एकत्रित करने की जरूरत है।

7. मेरी जानकारी के अनुसार इसाई धर्म गुरूओं ने अपने धार्मिक संगठन विस्तार के लिये धन, सेवा, सदभाव, प्रेम, करूणा तथा छल कपट तक का उपयोग किया किन्तु हिंसा, बलात्कार या बन्दूक का उपयोग नही किया । इसाई शासको ने दूसरे राज्यों को गुलाम बनाने के बाद भी धर्म परिवर्तन के लिये बल प्रयोग का सहारा नही लिया । इस्लाम ने जिस तरह जजिया कर लगाया, मन्दिरों को तोड़ा या जिहाद का नारा लगा दिया वैसा इसाइयत में नही हुआ। इसका मुख्य कारण यह था कि जिस तरह इस्लाम में धर्म और राज्य के बीच कोई स्पष्ट विभाजन रेखा नही दिखती थी वैसा इसाइयत में नही था। वहॉ ऐसी एक विभाजन रेखा थी अवश्य भले ही वह हिन्दुत्व के समान न रही हो । मैनें अपने लेख में इसाई धर्म का उल्लेख किया है न कि इसाई धर्मावलम्बी शासन की करूणा का। यदि शासन की भी तुलना करे तो करूणा के मामले में इसाई शासको का रेकार्ड कुल मिलाकर मुस्लिम शासको की अपेक्षा कम ही कठोर होगा ।

8. आपने प्रश्न करते समय हिन्दुत्व तथा हिन्दुस्तान को एक साथ जोड़ा जो मेरा उद्देश्य नही था। मेरी नजर में हिन्दुत्व एक समाज व्यवस्था है और इस्लाम एक धर्म नामधारी संगठन । कई सौ वर्षो के विदेशी शासन और विदेशी मूल के धर्मो की गुलामी के बाद भी हिन्दुत्व को जो क्षति स्वतंत्रता के बाद के साठ वर्षो में हुई उतनी तीव्र गति स्वतंत्रता के पूर्व नही थी । भारत स्वतंत्र होने के बाद सम्पूर्ण देश के आम नागरिकों का जो चरित्र पतन हुआ उसमें इस्लाम और इसाइयो की अपेक्षा हिन्दुओं का चरित्र पतन अधिक हुआ। इसाई और मुसलमानों ने विस्तार की नीति का सहारा लिया और हिन्दुत्व ने सुरक्षात्मक नीतियों का । इन दोनो नीतियो में आसमान जमीन का फर्क होता है। स्वतंत्रता के बाद भारत में हिन्दुत्व को सुरक्षा प्रधान नीतियॉ छोड़कर विस्तार प्रधान नीतियॉ का सहारा लेना चाहिये था। जब हिन्दुत्व को धर्म के रूप मे आगे आना था उस समय उसका संरक्षक राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ सता सघर्ष की दिशा में चला गया । यदि संघ सता सघर्ष की राह भी पकड लेता तो कोई क्षति नही होती, यदि वह धर्म की पूॅछ छोड देता । किन्तु संघ ने गाय की पूॅछ पकडकर राजनीति की वैतरणी पार करने की कोशिश की । परिणाम हुआ कि हिन्दुत्व की तटस्थता पर प्रश्न

चिन्ह लगने लगे । यदि हिन्दुत्व को सशक्त होना है तो उसे अपनी सम्पूर्ण गतिविधियों पर फिर से विचार करना होगा । 1. उसे इस्लाम और इसाइयत से सुरक्षा की बात बन्द करके अपने गुणो के आधार पर विस्तार की राह पकडनी होगी । घृणा और द्वेष विस्तार के आधार नही बन सकते । मुसलमान या इसाई न हिन्दुओं से द्वेष रखते है न घृणा करते है । वे तो हिन्दुओं के साथ मिलजुलकर रहते है और धीरे धीरे हमारी कमजोरीयों का लाभ उठाकर अपनी संख्या बढाते रहते है। हमारे भीतर अपने ही लोगो द्वारा ये घृणा और द्वेष के भाव कूट कूट कर भरे जा रहे है।

2. हिन्दुत्व को धर्म और राजनीति को बिल्कुल अलग अलग कर देना चाहिये। जो व्यक्ति या संगठन राजनीति और धर्म को साथ साथ जोड़कर चलना चाहें उन्हें अछूत मान लिया जाये तब भी कोई नुकसान नही होगा ।

3. धर्म समाज और राष्ट्र एक नही है। राष्ट्र सर्वोच्च न हो कर समाज सर्वोच्च है। यदि समाज व्यवस्था की तुलना करें तो न इस्लाम के पास स्पष्ट व्यवस्था है न ही इसाइयत के पास । साम्यवाद के पास तो बिल्कुल ही नही है। हम समाज व्यवस्था को राष्ट्रीयता से अधिक आगे लावें ।

मै चाहता हूँ कि इस विषय पर और खुलकर विचारों का आदान प्रदान हो तो मुझे भी सोचने का अवसर मिलेगा।